International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
www.ijesrr.org Volume-1, Issue-6 December- 2014 Email- editor@ijesrr.org

हिन्दी साहित्य के इतिहास का संक्षिप्त अध्ययन

Mr. Ram Niwas
Assistant Professor
BRM college of Education
Gharaunda, Karnal

सार–

साहित्य के इतिहास का अध्ययन विविध समयों की परिस्थितियों और प्रवृत्तियो के आधार पर किया जाता है इसलिए काल विभाजन की प्रक्रिया द्वारा प्रत्येक काल की सीमा का निर्धारण किया जाता है। विभिन्न युगों में साहित्यिक प्रवृत्तियों की शुरुआत, उनका उतार चढाव उनकी सीमा का निर्धारण करती हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी काल विशेष में जो प्रवृत्तियाँ है, वे एकदम खत्म हो जाती है या उनमे एकदम परिवर्तन आ जाता है। काल विशेष में चलने वाली प्रवृत्तियाँ कमोबेश होती हुयी विलुप्त होने लगती हैं और अन्य प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप धारण करने लगती हैं।

प्रस्तावना–

हिंदी साहित्य के आरम्भकाल को स्थिर करने की समस्या सदा से रही है। काल–सीमा–निर्धारण के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। एक ओर जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबंधु, रामकुमार वर्मा आदि इतिहासकार अपभ्रंश भाषा के उत्तरवर्ती रूप को हिंदी का आदिम रूप मानकर उसकी शुरुआत संवत 700 से मानते है। जार्ज ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का क्षेत्र भाषा की दृष्टि से निर्धारित किया जिसमें यह स्पष्ट किया गया कि हिंदी साहित्य में न तो संस्कृत प्राकृत को और न ही अरबी फारसी मिश्रित उर्दू को समाहित किया जा सकता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने इस काल को संधि काल नाम से अभिहित किया है। राहुल सांकृत्यायन इस काल को सिद्धकाल कहते हुए यह मानते हैं कि सिद्ध काव्य हिंदी का काव्य है। दूसरी ओर आचार्य रामचद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी व उनके समर्थक इतिहास लेखक संवत 1000 के आस–पास वास्तविक हिंदी भाषा व साहित्य की शुरुआत मानते हैं। एक सामान्य विचारधारा के अनुसार 7वीं से 10वीं शताब्दी तक जो साहित्य सामग्री उपलब्ध होती है, उसे अंकुरण काल की रचनाएँ मानते हुए हिंदी साहित्य की पूर्वपीठिका मान लिया जाये। इसमें जैन, नाथ, व सिद्ध साहित्य को समाहित किया गया है। 10वीं शताब्दी से हिंदी साहित्य के आदिकाल की शुरुआत मानी गयी है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पहली बार हिंदी साहित्य के इतिहास का कालगत एवं प्रवृत्तिगत दोनों रूपों में वर्गीकरण किया। सम्पूर्ण हिंदी साहित्य को तीन भागों में विभक्त कर उसकी सीमा का निर्धारण किया– आदिकाल (विक्रमी संवत 1050 से 1375 तक), मध्यकाल (विक्रमी संवत 1375 से 1900 तक), आधुनिक काल (विक्रमी संवत 1900 से अब तक)। प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने साहित्य को 4 भागों में विभक्त किया। आदिकाल को वीरगाथा काल नाम दिया। मध्यकाल को दो भागों में विभक्त किया– पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल, उन्हें भक्तिकाल और रीतिकाल नाम दिया। आधुनिक काल को गद्यकाल नाम दिया।

11वीं शती तक अपभ्रंश के प्रभाव से हिंदी मुक्त हो चुकी थी। उसके बाद व्यापक रूप में भक्ति का आन्दोलन पूरे देश में आरम्भ हो गया और हिंदी के विविध रूपों के माध्यम से भक्तिकाव्य लिखा जाने लगा। सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना के रूप में यह एक नये युग का आरम्भ था। 17वीं शती तक आते–आते जब देश में मुगलों का साम्राज्य आया तब साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति में भी परिवर्तन आया। भक्तिभावना की

प्रधानता के स्थान पर श्रृंगार व अलंकरण की प्रवृत्ति मुख्य रूप ग्रहण करने लगी। 19वीं शती के मध्य में जब देश में अंग्रेजों का राज्य स्थापित हुआ तब सन 1857 की क्रांति ने राष्ट्रीय चेतना व राजनीतिक जागरण के क्षेत्र में आन्दोलन का रूप ले लिया।

यह आधुनिक युग का आरम्भ था। लोगों में भाग्यवाद और अकर्मण्यता की भावना लुप्त होने लगी। देश को राजनीतिक व सामाजिक रूप में स्वतंत्र कराने की इच्छा बलवती हो गई। अंग्रेजों के आने से देश में ज्ञान–विज्ञान व विदेशी सभ्यता का प्रसार होने लगा। देशी व विदेशी संस्कृतियों में संघर्ष होने लगा। अनेक परिवर्तन लक्षित हुए और आधुनिक नवजागरण प्रकाश में आया। नवजागरण की चेतना से साहित्यिक विषयों में परिवर्तन होने लगा, राष्ट्रीयता की भावना जन–जन को आंदोलित करने लगी। स्वराज्य की भावना बलवती हो गयी, जीवन के सभी क्षेत्रों में नैतिक सुधार की

आवश्यकता महसूस होने लगी। व्यक्ति आत्म परीक्षण कर आत्म सुधार की भावना से भर उठा। यथार्थवादी सामाजिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। यह आधुनिक युग का सूत्रपात था। इस प्रकार हम हिंदी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभक्त कर सकते हैं–

आदिकाल – संवत 1050 से 1375 तक
भक्तिकाल – संवत 1375 से 1700 तक
रीतिकाल – संवत 1700 से 1900 तक
आधुनिक काल – संवत 1900 से अब तक

साहित्य में किसी भी काल की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का सहज ही प्रतिफलन होता है। युगीन परिस्थितियों के अनुसार साहित्यिक प्रवृत्तियाँ परिवर्तित होने लगती हैं। इस आधार पर उनका कालविभाजन होता है और तदनुरूप नामकरण किया जाता है। एक काल में जिस प्रवृत्ति की अधिकांश रचनाएँ उपलब्ध होती हैं उनको विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है परन्तु इसका अर्थ नहीं कि इस प्रवृत्ति के अतिरिक्त अन्य कोई प्रवृत्ति साहित्य में उपलब्ध नहीं होती, उसका चित्रण नहीं मिलता। एक ही काल में अनेक प्रवृत्तियाँ प्रचलित रहती हैं। प्रधानता व व्यापकता के आधार पर सीमा निर्धारण व नामकरण किया जाट है। किसी भी युग का नामकरण उसकी मूल साहित्यिक चेतना, साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुरूप ही होना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रवृत्ति को भी आधार बनाया जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास'में इस बात को स्पष्ट कर दिया है–"जिस कालखंड के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई पड़ी है, वह एक अलग काल माना गया है और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरुप के अनुसार किया गया है।"

हिंदी साहित्य के जन्म के समय देश की स्थिति शोचनीय थी, निरंतर विदेशी आक्रमण हो रहे थे। सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् उत्तर भारत की राजशक्ति नष्ट हो गयी। एक केन्द्रीय शक्ति के अभाव में अलग–अलग राजवंशों ने अपनी सत्ता के प्रसार के उद्देश्य से युद्ध किये। इस्लाम की शक्ति ने भी भारत पर अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया। महमूद गजनवी ने भारत पर 16 बार आक्रमण किया। धीरे–धीरे मुसलमान साम्राज्य की स्थापना हो गयी। राजनैतिक संघर्ष के साथ–साथ सामाजिक परिस्थितियां भी चिंताजनक थीं। चारण कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में जो यशोगान करते थे, वह साहित्य के रूप में प्रकाशित होता था। जिनमें वीरता का वर्णन होते हुए भी वह राष्ट्रीय भावना से रहित था। इस साहित्य में श्रृंगार रस का भी अंश मिलता है क्योकि चारण कवि जिन आश्रयदाताओं को युद्ध के लिए उत्साहित करते थे, उनके युद्धों का कारण कोई न कोई रमणी स्त्री होती थी जिसको पाने की प्रतिद्वंद्विता लगी रहती थी।

आचार्य शुक्ल ने आदिकाल को वीरगाथा काल नाम देते हुए यह लक्षित किया कि इस काल में दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं– अपभ्रंश की और देशभाषा की। अपभ्रंश की पुस्तकों में कई तो जैनों के धर्म तत्व निरूपण सम्बन्धी ग्रन्थ हैं जो साहित्य कोटि में नहीं आते और जिनका उल्लेख केवल यह दिखाने के लिए ही किया गया है की अपभ्रंश भाषा का व्यवहार कब से हो रहा था। साहित्यिक पुस्तकें केवल चार हैं–

विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता, कीर्तिपताका। देश भाषा काव्य की 8 पुस्तकें प्रसिद्ध हैं– खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचंद प्रकाश, जयमयंकजस चन्द्रिका, परमालरासो, खुसरो की पहेलियाँ और विद्यापति की पदावली। आचार्य शुक्ल का कहना है कि "इन्ही 12 पुस्तकों की दृष्टि से आदिकाल का लक्षण– निरूपण और नामकरण हो सकता है। इन पुस्तकों में से अंतिम दो और बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रन्थ वीरगाथात्मक ही है अतः आदिकाल का नाम वीरगाथा काल ही रखा जा सकता है।

आचार्य शुक्ल को लगता है कि जब से मुसलमानों की चढाइयों का आरम्भ होता है तब से हम हिंदी साहित्य की प्रवृत्ति एक विशेष रूप से बंधती हुई पाते हैं। राजाश्रित कवि और चारण कवि जिस प्रकार नीति–श्रृंगार के फुटकल दोहे राजसभाओं में सुनाया करते थे उसी प्रकार अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन भी किया करते थे राजाश्रित कवि अपने राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन अनूठी उक्तियों के साथ किया करते थे और अपनी वीरोल्लास भरी कविताओं से वीरों को उत्साहित किया करते थे। इस वीरगाथा को हम दोनों रूपों में पाते हैं– मुक्तक के रूप में भी और प्रबंध के रूप में भी। यही प्रबंध परंपरा रासो के नाम से पाई जाती है। साहित्यिक प्रबंध के रूप जो सबसे प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है, वह है पृथ्वीराज रासो। वीरगीत के रूप में हमें सबसे पुरानी पुस्तक बीसलदेव रासो मिलती है इसी को लक्ष्य कर इस काल को वीरगाथा काल कहा है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जब इस काल का नामकरण किया था, उस समय उस काल की अनेक रचनाएँ, ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध थी। जिन बारह रचनाओं को शुक्ल जी ने नामकरण का आधार बनाया, उनमे से कुछ संदिग्ध

हैं, कुछ परवर्ती रचनाएँ हैं। इन रचनाओं के आधार पर इस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियो की रूप रेखा स्पष्ट नहीं है। शुक्ल जी ने जिन जैन– सिद्ध नाथों की रचनाओं को धार्मिक प्रवृत्तियों के साथ साथ उच्च कोटि का कवित्व भी दृष्टिगत होता है जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कतिपय ग्रन्थों के आधार पर किसी काल विशेष का नामकरण नहीं किया जा सकता। इसलिए 'वीरगाथा काल' यह नाम एकांगी सिद्ध होता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य के आरंभिक काल को दो भागों में विभक्त कर उनका नामकरण संधिकाल और चारण काल किया है। संधिकाल के अंतर्गत उन्होंने सिद्धों व जैन कवियों की रचनाओं को समाहित किया है। चारण काल नाम वीरगाथाकाल की तरह चरित काव्यों का द्योतक है।

डॉ० वर्मा ने एक ही कालखंड के दो नाम निश्चित किये हैं। संधिकाल से दो भाषाओ– अपभ्रंश और हिंदी की संधि का बोध होता है। किसी एक कालखंड को दो नाम देना दो भिन्न कालों का ज्ञान कराता है। जिस सामग्री के आधार पर चारण काल नाम दिया गया है, वह सामग्री पर्याप्त व प्रामाणिक नहीं है।

राहुल सांकृत्यायन ने इस काल को सिद्ध सामंत काल कहा है और समय आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक माना है। वस्तुतः यह नाम दो काव्यधाराओं को स्पष्ट करता है। सिद्धों व सामंतों की रचनाएँ। साहित्य के किसी भी कालखंड का नामकरण उसकी प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर किया जाता है। सामंत कहने से हमारा ध्यान चारण साहित्य की ओर ही जाता है जो सर्वथा प्रमाणिक नहीं है।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी और डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इस काल को अपभ्रंश काल कहते हैं। उनके द्वारा रखा गया यह नाम भाषा की प्रधानता पर आधारित है जबकि साहित्य के किसी काल का नामकरण उस काल की विशेष साहित्यिक प्रवृत्तियो या वर्णित प्रतिपाद्य विषय के आधार पर होना चाहिए। अपभ्रंश काल कहने से यह भ्रम भी होता है कि यहाँ हिंदी नहीं, अपभ्रंश भाषा की बात की जा रही है। इस प्रकार यह नाम भ्रामक सिद्ध होता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस काल को आदिकाल कहना उचित समझते हैं। यह नामकरण भी यह भ्रम उत्पन्न करता है की हिंदी साहित्य की परम्पराएँ, काव्य रूढ़ियाँ इस काल में नवीन रूप में सामने आईं जबकि पूर्ववर्ती परम्पराएँ बहुत पुष्ट रूप में इस काल में दृष्टिगत होती है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस काल को बीजवपन काल के नाम से पुकारा है। कुछ विद्वानों ने इस काल को प्रारंभिक काल, आविर्भाव काल भी कहा है। ये नाम वास्तव में 'आदिकाल' नाम में ही समाहित हो जाते हैं। इस प्रकार सामान्यतः इस कालखंड को आदिकाल के नाम से जाना जाता है।

भक्तिकाल के सीमा निर्धारण और नामकरण के विषय में विद्वानों में प्रायः कोई विवाद नहीं है। देश में गौरव और गर्व को ठेस पहुँची क्योकि उनके सामने ही मंदिरों को नष्ट किया जा रहा था, लूटा जा रहा था, महापुरुषों का अपमान हो रहा था। जब मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हुआ तब हिन्दू जाति के जनता का आत्मगौरव और आत्मविश्वास डगमगाने लगा, उसे अपने पौरुष पर गर्व नहीं रहा। जनता उदास और हताश हो गयी । ऐसी स्थिति में उसका ध्यान भगवान की शक्ति और करुणा पर गया। भक्त कवियो ने जनता के ह्रदय में भक्ति का संचार किया। उन्होंने ईश्वर के प्रेमस्वरूप का वर्णन करते हुए हिन्दू–मुसलमानों के आपसी भेद–भाव को समाप्त करने की कोशिश की और मानव को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। एक ओर रामानुजाचार्य ने जिस सगुण भक्ति का निरूपण किया था, उनकी शिष्य परंपरा में स्वामी रामानंद जी ने विष्णु के अवतार श्रीराम की उपासना पर बल दिया, दूसरी ओर वल्लभाचार्य जी ने श्रीकृष्ण के प्रेममय रूप से जनता को मुग्ध किया। इस प्रकार राम व कृष्ण के प्रति समर्पित भक्त कवियों की परम्पराएँ चलने लगीं। यह सगुण काव्यधारा थी जिसका विशाल साहित्य इस काल में उपलब्ध होता है।

मुसलमानों का राज्य स्थापित हो जाने पर देश में नई परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगी। एक ऐसे भक्तिमार्ग का भी विकास होने लगा जिसने हिन्दू–मुसलमानों के बीच एकता स्थापित करने का प्रयास किया, एकेश्वरवाद का प्रचलन प्रारम्भ हुआ जिसमें एक ओर कबीर आदि कवियों ने निराकार ईश्वर के प्रति अपनी हार्दिक भावनाएं व्यक्त की । वो ईश्वर कण–कण में विद्यमान है इसलिए ऊँच–नीच व जाति–पाति का कोई भेद–भाव नहीं, कोई अलगावनहीं। मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने की भावना प्रबल हुई। ज्ञान पर विशेष बल दिया गया। इसी के साथ प्रेम तत्व को प्रधानता देने वाले ईश्वर की भक्ति की ओर उन्मुख सूफियों का एक वर्ग सामने आया जिन्होंने स्वयं मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं के घरों की प्रेमकहानियों को अपने काव्य का प्रतिपाद्य बनाया। लौकिक प्रेम के माध्यम से उस अलौकिक अव्यक्त सत्ता से मिलने की कल्पना की। मनुष्य के साथ–साथ प्रकृति का भी योगदान स्पष्ट किया जो मनुष्य के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करती है। पेड़–पौधे भी मानव की खुशी व गम में उसके साथ होते है, पशु–पक्षी भी मानव की भावनाओं के साथ प्रभावित होते है। उसका सन्देश तक पहुँचा देते हैं।

इन सबके कारण भक्ति व मानवता की सामान्य भावना का विकास हुआ, जाति–पाति का भेदभाव समाप्त करने का प्रयास हुआ, लोगो में आत्मगौरव का भाव जागृत हुआ, भक्ति के उच्च सोपान की ओर बढ़ते हुए जीवन में कर्म, ज्ञान और भक्ति का सूत्रपात हुआ। अनेक संत कवि व सूफी कवि उत्कृष्ट काव्य रचना करने लगे। आचार्य शुक्ल लिखते हैं– "सूफी कवियों ने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओ की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार ह्रदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुयी परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।

इस प्रकार सगुण व निर्गुण दो वर्ग बन गए। एक ओर तुलसीदास ने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ रामचरितमानस के माध्यम से लोगों के सामने जीवन की विविध परिस्थितियों व समस्याओं को सामने रखा, साथ ही उनके समाधान का संकेत भी दिया। राम के आदर्श रूप को अपने जीवन में अपनाने की प्रेरणा दी। उनके सत–चित आनंद स्वरुप ने लोगों के ह्रदय को

स्पर्श किया। तुलसीदास जी के विषय में आचार्य शुक्ल का कथन है– "भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो वह तुलसीदास जी को और कवि जीवन का कोई एक पक्ष लेकर चले हैं। जैसे– वीरकाल के कवि उत्साह को, भक्तिकाल के दूसरे कवि प्रेम और ज्ञान को। अलंकार काल के कवि दाम्पत्य या श्रृंगार को पर इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवदभक्ति का उपदेश देती है, दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा उसमें वर्तमान है। दूसरी ओर कृष्ण के प्रेमस्वरूप ने लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया।

निर्गुण धारा के प्रवर्तक कबीरदास हुए जिन्होंने हिन्दू–मुसलमान के बीच की खाई को पाटने का प्रयास किया। बहु देवोपासना, मूर्तिपूजा का विरोध किया, साथ ही मुसलमानों के रोजा नमाज आदि की निस्सारता को भी दिखाया। दोनों जातियों के कट्टरपन को दूर करने का प्रयास किया। ईश्वर प्रेम की शुद्ध भावना और व्यक्तिगत सात्विक जीवन पर विशेष बाल दिया। देश में भक्तिकाव्य की दो शाखाएं – निर्गुण व सगुण समानान्तर रूप में चली। निर्गुण धरा की दो शाखाएं हुईं– संत काव्य और सुफिकव्य। सगुण काव्यधारा भी दो शाखाओं में विभक्त हुयी– रामकाव्यधारा और कृष्णकाव्यधारा। इन सभी धाराओं ने लोगों की आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए उनके अन्दर आत्मगौरव का भाव जागृत किया। इन कवियों ने मन–वचन–कर्म की सरलता और समानता को भक्ति का श्रेष्ठ व सरल लक्षण बताया। इस काल में आध्यात्मिक ज्ञान और भक्ति के विषयों को लेकर काव्य रचना होती रही। भक्तिकाल में हिंदी साहित्य अपनी पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुका था इसलिए इस युग को 'हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल' भी कहा जाता है।

भक्तिकाल के बाद रीतिकाल में लक्षणग्रन्थोंकी प्रचुरता होने लगी। 'रीति' शब्द का प्रयोग संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति संप्रदाय से जुड़ा है जहाँ रीति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया परन्तु हिंदी में इस शब्द का प्रयोग काव्य लेखन की परंपरागत परंपरा और रुढ़ि के रूप में किया गया।

रीतिकाल का रचनाकाल मुगल सम्राट औरंगजेब के शासन के साथ आरम्भ होता है। औरंगजेब के शासनकाल में मुगल साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया था। इन शासकों में विलासी मनोवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। मुसलमान सम्राटों के समान तत्कालीन सामंतो, नबाबों और हिन्दू राजाओं ने भी ऐश्वर्यमय विलासी जीवन बिताना आरंभ कर दिया था। धार्मिक क्षेत्र में भी संत कवियों का सुधारवादी आन्दोलन शिथिल पड़ गया था। सगुणोपासक भक्त कवियों की धार्मिक भावना में अब श्रृंगारी मनोवृत्ति ने प्रवेश कर लिया था। कृष्ण भक्त कवियों ने राधा और कृष्ण की प्रेम क्रीडाओं का चित्रण करके अलौकिक प्रेम की जो धारा बहाई थी, वह धीरे–धीरे लौकिक श्रृंगार में परिणत हो रही थी। भक्तिकाल के कवियों ने लोगों के मन में संसार से विरक्त होने का भाव जागृत करने की अतिशय कोशिश की जिससे मानव मन कुण्ठित होने लगा। इसी की प्रतिक्रिया स्वरुप भक्ति के साथ–साथ भोग की भावना प्रकट होने लगी जिससे रीतिकाल में श्रृंगार, भक्ति व नीतिपरक काव्य की रचना होने लगी। राधा और कृष्ण को सामान्य नायक–नायिका के रूप में चित्रित कर आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता प्रकट होने लगी। काव्य में रस– निरूपण व अलंकार निरूपण की शुरुआत हो गयी। कवियों ने एक यह एक परिपाटी बना ली कि वे अलंकार या रस का लक्षण देकर उदाहरण रूप में अपनी सरस कविताएँ प्रस्तुत करने लगे। अधिकतर कविताएँ श्रृंगार रस की होती थी।

इस काल के नामकरण के विषय में विद्वानों में मतभेद है। शुक्ल जी ने रीति परंपरा को ध्यान में रखते हुए रीतिकाल नाम दिया। डॉ० भागीरथ मिश्र भी लिखते हैं कि इस काल के कवि को रस, अलंकार, नायिका भेद,ध्वनि आदि के वर्णन के सहारे ही अपनी कवित्त प्रतिभा दिखाना आवश्यक था। यह युग रीति पद्धति का ही युग था। इससे सम्बंधित असंख्य ग्रन्थ लिखे गए।

मिश्रबंधुओं ने इस काल को अलंकृत काल कहा और यह तर्क दिया कि इस युग में कविता को अलंकृत करने की परिपाटी रही है जबकि वास्तविकता यह है कि इस काल में कवित्त प्रधान काव्य की रचना हुई जिसने आध्यात्मिकता के स्थान पर आत्मानुभूति युक्त लोक जीवन को प्रधानता दी, केवल अलंकृत चमत्कार पर बल नहीं दिया। इस काल के काव्य में अलंकारों के साथ–साथ रस पर भी बल दिया गया, इतर काव्यांगो को भी काव्य में उचित स्थान प्राप्त हुआ इसलिए यह नाम एकांकी सिद्ध होता है।

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल का नामकरण श्रृंगारकाल किया है। यह नाम इस आधार पर किया गया कि इस काल में काव्य की व्यापक प्रवृत्ति श्रृंगार वर्णन ही थी मगर यह श्रृंगारिक भावना कवियों की कविता का प्रेरक तत्व नहीं थी। वे अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न कर आर्थिक रूप से संपन्न होना चाहते थे।इस काल के कवियों ने मुख्य रूप से काव्यांग निरूपण की परिपाटी को अपनाया था । इसके अतिरिक्त यह तर्क भी दिया जाता है कि इस काल में श्रृंगार के साथ–साथ वीर व भक्तिपरक रचनाएँ भी लिखी गई थीं। 'रीति' शब्द में श्रृंगार, वीर, भक्ति, काव्यशास्त्र सभी विषय समाहित हो जाते है। श्रृंगार की प्रवृत्ति को भी रीति के अंतर्गत स्वीकार किया जा सकता है। इसलिए श्रृंगारकाल यह नाम अनुपयुक्त सिद्ध होता है।

इस काल के समस्त कवियों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है– रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध व रीतिमुक्त। रीति परंपरा का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सभी में देखा जा सकता है। डॉ० नगेन्द्र का कथन है कि इस काल को रीतिकाल कहना अधिक वैज्ञानिक और संगत है क्योकि इस युग में रीति सम्बन्धी ग्रन्थ ही अधिकांशतः नहीं लिखे गए अपितु इस युग के कवियों की प्रवृत्ति भी ऐसे ही ग्रन्थ रचने की थी। रीति निरूपण की यह प्रवृत्ति अपनी विशिष्ट पृष्ठभूमि और परंपरा के साथ आई थी। इस प्रकार आज लगभग सभी इतिहासकार इस नाम को अधिक उपयुक्त व युक्तिसंगत मानते हैं।

डॉ० भागीरथ मिश्र का कथन है कि इस काल को कलाकाल कहने से कवियों की रसिकता की उपेक्षा होती है, श्रृंगार काल कहने से वीर रस और राजप्रशंसा की। रीतिकाल कहने से प्रायः कोई भी महत्वपूर्ण वस्तुगत विशेषता उपेक्षित नहीं होती और प्रमुख प्रवृत्ति सामने आ जाती है। यह युग रीति पद्धति का युग था । यह धारणा वास्तविक रूप से सही है।आधुनिक काल के नामकरण पर भी विद्वानों में मतभेद हैं शुक्ल जी ने पद्य के स्थान पर खड़ी बोली में साहित्य रचना को लक्षित कर इस काल को गद्यकाल कहा है। इस काल में खड़ी बोली गद्य की विविध विधाओं के विकसित होने की दिशा में नवीन विषयों पर साहित्य रचना होने लगीं थी इसलिए इसे आधुनिक काल कहा गया। डॉ० बच्चन सिंह लिखते है– "आधुनिक शब्द दो अर्थों की सूचना देता है। पहला– मध्यकाल से भिन्नता। मध्यकाल अपने अवरोध, जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एकरस हो चुका था, एक विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया ने उसे पुनः गद्यात्मक बनाया। दूसरा–लौकिक दृष्टिकोण। इस समय धर्म, दर्शन, साहित्य, चित्र आदि सभी के प्रति नए दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ। मध्यकाल में पारलौकिक दृष्टि से मनुष्य इतना अधिक आच्छन्न था कि उसे अपने परिवेश की सुध ही नहीं थी पर आधुनिक युग में वह अपने पर्यावरण के प्रति अधिक सतर्क हो गया। आधुनिक युग की पीठिका के रूप में इस देश में जिन दार्शनिकों चिंतकों और धार्मिक व्याख्याताओं का आविर्भाव हुआ, उनकी मूल चिन्ताधारा इहलौकिक ही है। सुधार, परिष्कार और अतीत का पुनराख्यान नवीन दृष्टिकोण की देंन है, आधुनिक युग की ऐतिहासिक प्रक्रिया का ही परिणाम है।

इस काल में देश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में जिस प्रकार की उथल–पुथल हुयी और उसके प्रभाव स्वरुप साहित्य में पुनर्जागरण की चेतना सामने आई, राष्ट्रीयता का स्वरुप स्पष्ट होने लगा, हर स्थिति में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया जाने लगा। राष्ट्रीय चेतनाका विकास होने से देश के प्राचीन गौरव का गुणगान होने लगे, अंग्रेजी साम्राज्य का विरोध होने लगा, व्यक्ति की निजी संवेदनाएं, भावनाएं व विचार अभिव्यक्त होने लगा, साहित्यकारों ने नवीनता का परिचय दिया। हिंदी गद्य के विकास ने जनता की

अभिव्यक्ति को सरल व सुगम बना दिया और आधुनिकता का आरम्भ हो गया। काव्य की पहुँच एक सीमित वर्ग तक थी। गद्य की विधाएँ जन–जन तक पहुँची। अंग्रेजों के कारण ज्ञान–विज्ञान के प्रसार से जनता में जागृति आई, वैज्ञानिक अध्ययन

होने लगे। गद्य की इस विविधता व अनेकरूपता को देखकर ही आचार्य शुक्ल ने इस काल को गद्यकाल के नाम से अभिहित किया। साहित्य के सशक्त साधन के रूप में गद्य की अनेक विधाओं का विकास हुआ। प्राचीन संस्कृति के उद्धार की बातें होने लगी, वैचारिक स्वतंत्रता व सामाजिक सुधार की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। भारतेंदु व उनके सहयोगी लेखको ने साहित्य के माध्यम से, अनेक पत्र पत्रिकाओं के सहारे अपनी बात सामान्य जनता तक पहुँचाने का प्रशंसनीय प्रयास किया।

सार–

हिंदी साहित्य के पूर्व कालों में साहित्य विशेष रूप से काव्यमय था। आधुनिक युग में भी काव्य सम्बन्धी अनेक शैलियों का विकास हुआ, साथ ही गद्य की विविध विधाओ– उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आलोचना का उद्भव और विकास भी हुआ। इसलिए विविध शैलियों, साहित्यरूपो, प्रवृत्तियों और विचारधाराओं से परिपूर्ण इस युग को आधुनिक युग कहा जाता है। इस काल के साहित्य में विविधता दिखाई देती है। हिंदी काव्य सर्जना के अनेक मोड़ दृष्टिगत होता है। जिनमें काल्पनिकता और आदर्शवादी भूमिकाओ के स्थान पर यथार्थवादी भौतिकता की रचनाएँ प्रस्तुत हुईं। इसी यथार्थवादी भूमिका के कारण इस काल में गद्य साहित्य की विविध धाराओं का भी विकास हुआ जिनमे जीवन की समस्याओं और संघर्षों का चित्रण मिलता है। भोगे हुए जीवन का वास्तविक चित्र हमारे सामने प्रस्तुत होता है। गद्य और पद्य दोनों धाराओं ने आधुनिक काव्य में साहित्य को पुष्ट किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. हिन्दी विश्वकोश खण्ड– 1 से 12 रामप्रसाद त्रिपाठी, फूलदेव सहाय वर्मा, मुकुंदीलाल वर्मा नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
2. भारत का इतिहास रोमिला थापर राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. महाभारत कोश डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग मित्तल एण्ड संस, दिल्ली
4. कबीर ग्रंथावली राम किशोर शर्मा लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. शिक्षार्थी हिन्दी–अंग्रेजी शब्दकोश डॉ. हरदेव बाहरी राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली
6. हिन्दी भाषा का इतिहास डॉ. भोलानाथ तिवारी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
7. स्वतंत्रता सेनानी कोश डॉ. एस.एल. नागोरी, श्रीमती कान्ता नागोरी शीतल प्रिंटर्स, जयपुर
8. भारतीय चरित कोश लीलाधर शर्मा ष्पर्वतीयष शिक्षा भारती, मदरसा रोड, दिल्ली
9. शुद्ध हिंदी कैसे लिखें डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली
10. भारत और मानव संस्कृति विशम्भरनाथ पांडे सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
11. भारत का प्राचीन इतिहास ईश्वरी प्रसाद, शैलेन्द्र शर्मा मीनू पब्लिकेशंस, इलाहाबाद
12. मध्यकालीन भारत खण्ड 1 और 2 हरिश्चन्द्र वर्मा हिंदी माध्यम कार्यांवय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय